12

शैक्षिक चिन्तक जॉन डीवी

[Educational Thinker John Dewey]

डीवी की जीवनी और कार्य

(Biography and Works of Dewey)

जॉन डीवी का जन्म 1859 में अमेरिका में वारमॉण्ट के बर्लिंगटन नगर में हुआ था। इनके पिता गाँव के एक छोटे से दूकानदार थे और माता एक आशावादी स्त्री थीं। जॉन डीवी की प्रारम्भिक शिक्षा इनकी जन्मभूमि के विद्यालयों में ही हुई। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के बाद ये अपने परिवार की परम्पराओं को तोड़ कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की ओर बढ़े। इनके इस निश्चय में इनकी माता का बड़ा सहयोग रहा । 1879 में इन्होंने वारमॉण्ट विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। इनकी दर्शन विषय में विशेष रुचि थी और इसी में इन्होंने सर्वाधिक अंक प्राप्त किए थे। बी० ए० करने के बाद ये एक वर्ष तक दर्शन के अध्ययन में लगे रहे और साथ-साथ अध्यापन कार्य करते रहे। अब इन्होंने जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया, जहाँ ये ख्याति प्राप्त विद्वानों के सम्पर्क में आए। दो वर्ष के अथक् परिश्रम के बाद इन्होंने काण्ट के दर्शन पर पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। 1888 में ये मिनसोटा विश्वविद्यालय में दर्शन के प्राध्यापक नियुक्त हुए। इन्होंने यहाँ एक वर्ष ही कार्य किया था कि 1889 में इन्हें मिशीगन विश्वविद्यालय में स्थान मिल गया। यहाँ ये 1894 तक रहे। यहाँ रहते हुए इन्होंने दर्शन विषय पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिए और विशेष ख्याति प्राप्त की। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर 1894 में, जब ये केवल 35 वर्ष के थे, इन्हें शिकागो विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग का अध्यक्ष बनाकर बुला लिया गया। यहाँ पर इन्हें दर्शन और शिक्षा दोनों विषयों को पढ़ाने का अवसर मिला। परिणामतः शिक्षा विषय में भी इनकी रुचि बढ़ी। यहाँ रहते हुए 1896 में इन्होंने अपने शिक्षा सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणित करने के लिए एक छोटे से प्रयोगात्मक विद्यालय (Laboratory School) की स्थापना की।

इस विद्यालय में 4 से 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को प्रवेश दिया जाता था और प्रत्येक वर्ग (Section) में 8-10 विद्यार्थी रक्खे जाते थे। यह प्रयोगात्मक विद्यालय एक ऐसा विद्यालय था जिसमें शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों और विचारों का प्रयोग होता था, उनके परिणामों की आलोचनात्मक व्याख्या होती थी और नए-नए निर्णय निकाले जाते थे और नए-नए सिद्धान्तों की खोज होती थी और यह चक्र चलता रहता था। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने इसे शिक्षा शोध प्रयोगशाला की संज्ञा दी है।

Scanned with CamScanner

प्रयोगात्मक विद्यालय की स्थापना के बाद डीवी ने अपने विचारों को लेखबद्ध करना शुरू किया। 1896 में इनकी सर्वप्रथम रचना प्रकाशित हुई जिसका नाम है— 'इन्ट्रैस्ट एज रिलेटिड टू विल' (Interest as Related to Will)। इसके बाद 1897 में ' माई पैडागॉजीकल क्रीड' (My Padogogical Creed), 1889 में 'द स्कूल एण्ड सोसाइटी' (The School and Society) और 1902 में 'द चाइल्ड एण्ड द करीक्यूलम' (The Child and the Curriculum) प्रकाशित हुई। 1903 में ये शिक्षा निदेशक बना दिए गए। इस पद पर इन्होंने केवल एक वर्ष कार्य किया। इसके बाद ये विश्वविख्यात कोलम्बिया विश्वद्यिालय में दर्शन के प्रोफेसर बने। 1904 से 1930 तक ये इसी विश्वविद्यालय में रहे। अध्यापन के साथ शिक्षा की समस्याओं पर चिन्तन और लेखन यहाँ भी जारी रहा। यहाँ रहते हुए इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें से कुछ मुख्य ग्रन्थों के नाम हैं— 'रिलेशन ऑफ थ्योरी टु प्रेक्टिस इन द एजूकेशन आफ टीचर्स' (Relation of Theory to Practice in the Education of Teachers, 1904), 'द स्कूल एण्ड द चाइल्ड' (The School and the Child, 1907), 'मॉरल प्रिंसीपिल्स इन एजूकेशन' (Moral Principles in Education, 1907), 'हाऊ वी थिंक' (How We Think, 1910), 'इन्ट्रैस्ट एण्ड एफर्ट इन एजूकेशन' (Interest and Effort in Education, 1913), 'स्कूल ऑफ टुमारो' (School of Tomorrow, 1915) 'डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन' (Democracy and Education 1916), 'रीकन्सट्रक्शन इन फिलॉसफी' (Reconstruction in Philosophy, 1920), 'ह्यूमेन नेचर एण्ड कन्डक्ट' (Human Nature and Conduct, 1922) और 'सोर्सिज ऑफ साइन्स एजूकेशन (Sources of Science Education, 1929)। इन ग्रन्थों के माध्यम से इनकी ख्याति देश-विदेश में फैलने लगी। 'डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन' इनका सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण शिक्षा ग्रन्थ है। 1919 में ये जापान के टोकियो विश्वविद्यालय में दर्शन और शिक्षा पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किए गए। 1921 में इन्हें चीन के पेकिंग विश्वविद्यालय से आमन्त्रण मिला। 1931 में इन्हें टर्की की सरकार ने अपने देश के विद्यालयों के संगठन के लिए आमन्त्रित किया। टर्की के अतिरिक्त ये अन्य देशों में भी बुलाए गए। इन्होंने अपनी इच्छा से भी देश-विदेशों का भ्रमण किया और लोगों को अपने शैक्षिक विचारों से अवगत कराया। ये अपने जीवन में रूस भी गये थे। इन सब कार्यों के साथ ये लेखन कार्य बराबर करते रहे और जीवन के अन्त तक लिखते रहे । डीवी ने लगभग 50 ग्रन्थों की रचना की है। 1952 में, जब ये 92 वर्ष के थे, इनका स्वर्गवास हो गया।

डीवी का दार्शनिक चिन्तन
(Philosophical Thoughts of Dewey)

जॉन डीवी दर्शनशास्त्र के एक प्रतिभाशाली छात्र थे। इन्होंने अनेक दार्शनिकों और दार्शनिक सम्प्रदायों का अध्ययन किया था। अपने जीवन में इन्होंने प्लेटो, हीगल, कान्ट और डार्विन आदि अनेक दार्शनिकों के विचारों का विशेष अध्ययन किया था। कान्ट के दार्शनिक विचारों पर तो आपने शोध ही किया था और पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। डीवी महोदय के जीवन और लेखों का अध्ययन करने के बाद यह पता चलता है कि डीवी के दार्शनिक विचारों में परिवर्तन होता रहा था। प्रारम्भ में डीवी पर अपने प्रोफेसर जार्ज एस० मॉरिस का प्रभाव पड़ा, जिनके प्रभाव से इन्होंने हीगल के आदर्शवादी दर्शन को स्वीकार किया। इसके बाद डार्विन से प्रभावित हुए और इन्होंने उसके 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' और 'सबल की विजय' इन दो सिद्धान्तों को

Scanned with CamScanner

स्वीकार किया और इस प्रकार आदर्शवाद को त्याग कर प्रकृतिवाद के समर्थक बने । इसके बाद जॉन डीवी पर सबसे अधिक प्रभाव विलियम जेम्स (William James) और उनके प्रयोजनवादी दर्शन (Pragmatism) का पड़ा। आज ये प्रयोजनवादी दार्शनिक के रूप में ही विख्यात हैं। यहाँ हम डीवी के दार्शनिक चिन्तन को उसकी तत्त्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा के रूप में देखने-समझने का प्रयत्न करेंगे।

डीवी के दार्शनिक चिन्तन की तत्त्व मीमांसा

जेम्स की भाँति डीवी ने भी अपना समय आत्मा-परमात्मा की व्याख्या में नहीं लगाया। इन्होंने अपनी सारी शक्ति इस स्थूल जगत और उसकी क्रियाओं की व्याख्या करने में ही लगाई। डीवी इस संसार को किसी दैवीय शक्ति की कृति नहीं मानते थे, ये इसे विभिन्न क्रियाओं का परिणाम मानते थे और यह मानते थे कि यह संसार सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है और इसमें सदैव परिवर्तन होता रहता है। डीवी किसी सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक सत्य अथवा मूल्यों में विश्वास नहीं करते थे। इनका तर्क था कि इस परिवर्तनशील संसार में कोई अपरिवर्तनशील सत्य अथवा मूल्य निश्चित नहीं किए जा सकते, संसार में परिवर्तन के साथ उसके मूल्य भी परिवर्तित होते रहते हैं। डीवी के अनुसार दर्शन का कार्य बदलते हुए संसार के लिए सत्य एवं मूल्यों की खोज करना होना चाहिए। इनकी दृष्टि से यह कार्य प्रयोगों द्वारा ही किया जा सकता है। इस विचारधारा को विद्वान प्रयोगवाद (Experimenatalism) कहते हैं।

डीवी के अनुसार मनुष्य जीवन के सत्य और मूल्य समय और स्थान के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। जीवन के इन मूल्यों को मनुष्य स्वयं निश्चित करता है। इनके अनुसार वे ही वस्तुएँ, क्रियाएँ और विचार सत्य होते हैं जिनकी मानव जीवन में कोई उपयोगिता होती है। डीवी मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानते थे इसलिए जब ये उपयोगिता की बात करते हैं तो उसमें व्यक्ति और समाज दोनों के हितों की बात समाहित होती है। स्पष्ट है कि उपयोगिता से डीवी महोदय का तात्पर्य केवल भौतिक (व्यवहारिक) उपयोगिता से है। अपने इसी विचार के कारण ये प्रयोजनवादी दार्शनिक माने जाते हैं।

मनुष्य को डीवी मनोशारीरिक एवं सामाजिक प्राणी मानते थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य का विकास समाज की क्रियाओं में भाग लेने से ही होता है।

मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में डीवी का अपना अलग मत है। इन्होंने स्पष्ट किया कि यह संसार गतिशील है, इसमें निरन्तर क्रिया होती रहती है जिसके परिणाम स्वरूप इसमें निरन्तर परिवर्तन एवं विकास होता रहता है। मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में इनका मत है कि मनुष्य का विकास समाज की क्रियाओं में भाग लेने से होता है।

डीवी के दार्शनिक चिन्तन की ज्ञान मीमांसा

डीवी उन्हीं वस्तुओं और क्रियाओं के ज्ञान को सत्य ज्ञान मानते थे जिनकी मानव जीवन में उपयोगिता है। अब प्रश्न उठता है कि इस सत्य ज्ञान की खोज कैसे होती है। डीवी के अनुसार सत्य की खोज क्रियाओं के परिणाम के आधार पर होती है। इनका स्पष्टीकरण है कि क्रिया द्वारा ज्ञान अर्जित होता है और ज्ञान से सत्य का निर्णय होता है। इस प्रकार डीवी क्रिया को ज्ञान प्राप्ति

Scanned with CamScanner

और सत्य की खोज का आधार मानते थे। अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य सत्य की खोज के लिए अग्रसर कब होता है। डीवी का मत है कि जब उसके सामने कोई समस्या उपस्थित होती है। इनका स्पष्टीकरण है कि समस्या के उपस्थित होते ही मनुष्य उसका हल ढूँढने लगता है। वह सबसे पहले उसके अनेक हलों की कल्पना करता है, फिर इन उपायों को प्रयोग की कसौटी पर कस कर उनकी सत्यता की परख करता है और जो क्रियाएँ सहायक होती हैं उन्हें स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार डीवी द्वारा प्रतिपादित सोचने अथवा सत्य की खोज करने के पाँच पद होते हैं— (1) समस्या अथवा कठिनाई की अनुभूति, (2) समस्या का स्पष्टीकरण, (3) समस्या के सम्भावित समाधानों की कल्पना और उनका लेखन, (4) सम्भावित समाधानों को प्रयोग की कसौटी पर कसना और (5) प्रयोग के परिणामों का अवलोकन और निर्णय निकालना। डीवी ने स्पष्ट किया कि समस्या के समाधान की बात तभी उठती है जब मनुष्य को समस्या का स्पष्ट ज्ञान हो। समस्या के स्पष्ट ज्ञान के लिए और समस्या की अनुभूति करने के लिए उसे संवेदनशील होना चाहिए। यह संवेदनशीलता उसी व्यक्ति में होती है जिसमें सामाजिकता का विकास हो चुकता है। डीवी का मत है कि ऐसे संवेदनशील सामाजिक प्राणी ही अपना और समाज का हित करते हैं।

डीवी के दार्शनिक चिन्तन की आचार मीमांसा

डीवी आध्यात्मिक संसार में विश्वास नहीं करते थे, ये तो मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते थे और उसे इसी संसार के लिए तैयार करना चाहते थे। भौतिक उपयोगिता पर ये बहुत बल देते थे। इनका मत था कि नए-नए भौतिक सत्यों (मनुष्य उपयोगी वस्तुओं एवं क्रियाओं) की खोज से ही मनुष्य का जीवन सुखमय बनता है। रोटी, कपड़े और मकान की समस्या को हल करने के साथ-साथ ये मनुष्य को उसकी सामाजिक समस्याओं के हल करने के लिए तैयार कर देना चाहते थे। इनका विश्वास था कि इस संसार में वही मनुष्य सुखी रह सकता है जो अपनी इन समस्याओं का हल सफलता से खोज लेता है।

डीवी मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करते थे। ये प्रत्येक मनुष्य को उसकी अपनी रुचि, रुझान और योग्यतानुसार विकास करने की पूर्ण स्वतंत्रता देना चाहते थे। ये किसी मनुष्य पर किसी प्रकार के आदर्श नहीं लादते। ये चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य अपने लिए सत्यों की खोज स्वयं करे। परन्तु किसी भी स्थिति में ये व्यक्ति को इतनी स्वतन्त्रता नहीं देते कि वह समाज हित में बाधक बने। ये व्यक्ति और समाज दोनों के विकास की बात करते थे। इस प्रकार डीवी लोकतन्त्र के हामी थे।

डीवी का शैक्षिक चिन्तन

(Educational Thoughts of Dewey)

डीवी प्रयोजनवादी विचारक हैं। ये किन्हीं शाश्वत सत्यों और मूल्यों में विश्वास नहीं करते थे। ये उसी को सत्य मानते थे जिसकी व्यवहारिक जीवन में उपयोगिता है। इनके अनुसार यह संसार परिवर्तनशील है, परिवर्तनशील संसार में अपरिवर्तनशील सत्य और मूल्यों की कल्पना उचित नहीं। ये मनुष्य को परिवर्तनशील समाज में कुशलतापूर्वक रहना सिखाना चाहते थे। यहाँ इनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत है।

Scanned with CamScanner

शिक्षा का सम्प्रत्यय

जॉन डीवी शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते थे। इनके अनुसार न तो शिक्षा साध्य है और न मनुष्य जीवन की तैयारी का साधन, यह तो स्वयं जीवन है। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है, सामाजिक चेतना में भाग लेने से उसकी इन शक्तियों में विकास होता है। इनको डीवी ने शिक्षा के मनोवैज्ञानिक (Psychological) और सामाजिक (Social) पक्ष कहा है। मनोवैज्ञानिक पक्ष में बालक की जन्मजात शक्तियाँ, रुचियाँ एवं व्यष्टिगत विशेषताएँ आती हैं, और सामाजिक पक्ष में सामाजिक दशाएँ, परिवार, पास-पड़ोस, संघ, समूह, सभ्यता एवं संस्कृति आदि आते हैं। डीवी का कहना है कि मनुष्य समाज में रहकर नित्य नए-नए अनुभव करता है और इन अनुभवों में से अपने तथा समाज के उपयोग के अनुभवों का चुनाव करता है। डीवी ने शिक्षा की परिभाषा इसी आधार पर दी है। इनके अनुसार—'शिक्षा अनुभव के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है' (Education may be defined as the process of reconstruction of experience.)।

डीवी के अनुसार मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी विशेषता विकास है। यह विकास अनेक दिशाओं में होता है—शारीरिक, मानसिक और सामाजिक। इस विकास से ही मनुष्य अपने प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण पर नियन्त्रण रखता है और जो कुछ प्राप्त किया जा सकता है उसे प्राप्त करता है। इस आधार पर भी डीवी ने शिक्षा को परिभाषित किया है; यथा—'शिक्षा व्यष्टि में उन सब क्षमताओं का विकास है जो उसको अपने पर्यावरण पर नियन्त्रण रखने और अपनी सम्भावनाओं की पूर्ति करने के योग्य बनाए' (Education is the development of all those capacities in the individual which will enable him to control his environment and fulfil his possibilities.)।

शिक्षा के उद्देश्य

डीवी जीवन के किसी अन्तिम उद्देश्य में विश्वास नहीं करते थे। इसके साथ-साथ ये शिक्षा को साध्य अथवा साधन किसी भी रूप में न मानकर, उसे जीवन मानते थे। अतः इनके विचार से शिक्षा का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं हो सकता। इनके अनुसार यदि शिक्षा का कोई उद्देश्य है तो यही कि उसके द्वारा मनुष्यों में ऐसे गुणों और क्षमताओं का विकास किया जाए कि वह अपने वर्तमान जीवन को कुशलतापूर्वक जी सके और अपने भावी जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सके। शिक्षा के उद्देश्य सम्बन्धी डीवी के विचारों को हम निम्नलिखित रूप में संजो सकते हैं।

1. अनुभवों का पुनर्निर्माण और पर्यावरण के साथ समायोजन — इनका स्पष्टीकरण है कि मानव जीवन एक गतिशील है, परिवर्तनशील है, अतः उसकी शिक्षा भी गतिशील एवं परिवर्तनशील होनी चाहिए। तब परिवर्तनशील शिक्षा का अपरिवर्तनशील उद्देश्य कैसे हो सकता है। अगर शिक्षा का कोई उद्देश्य हो सकता है तो यही कि मनुष्य अपने जीवन की गतिशीलता के साथ अपने आपको समायोजित करता चले। इसको हम अनुभवों का पुनर्निर्माण और पर्यावरण के साथ समायोजन करने का उद्देश्य कह सकते हैं।

2. सामाजिक कुशलता का विकास — डीवी के अनुसार मनुष्य जो कुछ विचार करता है वह समाज में रहकर उसकी चेतना में भाग लेकर ही करता है। समाज को समझने और उसमें

Scanned with CamScanner

अपने आपको समायोजित करने के कौशल को डीवी सामाजिक कुशलता (Social Efficiency) कहते थे। इनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्यों में इस सामाजिक कुशलता का विकास करना ही होता है।

3. लोकतन्त्रीय जीवन का प्रशिक्षण — डीवी लोकतन्त्रीय समाज के समर्थक थे। ऐसे समाज के सभी कार्यों में कुशलतापूर्वक भाग लेने के लिए इनकी दृष्टि से एक व्यक्ति में सात प्रकार की क्षमताएँ होनी चाहिए। यथा—स्वास्थ्य, क्रिया करने की क्षमता, योग्य गृहस्थ, व्यवसाय, नागरिकता, अवकाश काल का उचित उपयोग और नैतिकता एवं चरित्र। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो इनके अन्तर्गत शिक्षा के सभी पूर्व निश्चित उद्देश्य—शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक, व्यवसायिक और नागरिकता की शिक्षा समाहित हैं। अन्तर केवल इतना है कि डीवी इनका कोई मापदण्ड निश्चित नहीं करते। इनका कहना है कि समाज की बदलती हुई स्थितियों में इनका स्वरूप स्वयं बदलता रहेगा।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

डीवी ने परम्परागत विषय केन्द्रित पाठ्यचर्या को दूषित बताया। इन्होंने इस बात पर बल दिया कि पाठ्यचर्या कृत्रिमता से दूर, बच्चों के वास्तविक जीवन की क्रियाओं पर आधारित होनी चाहिए। इनके अनुसार समाज गतिशील है, उसकी आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं, अतः पाठ्यचर्या में भी समय की आवश्यकताओं के अनुसार बदलने का गुण होना चाहिए। पाठ्यचर्या के निर्माण में भी डीवी ने बच्चों की मनोवैज्ञानिक स्थिति, सामाजिक स्थिति और विषय एवं क्रियाओं की उपयोगिता पर बल दिया है और उन्हें पाठ्यचर्या के निर्माण के आधार बताया है। इन्होंने विभिन्न स्तरों के लिए किसी निश्चित पाठ्यचर्या की योजना तो प्रस्तुत नहीं की पर पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए कुछ सिद्धान्त अवश्य निश्चित किए हैं। यहाँ हम उनकी क्रमबद्ध व्याख्या करना आवश्यक समझते हैं।

1. पाठ्यचर्या बाल केन्द्रित हो — डीवी ने परम्परागत विषय केन्द्रित पाठ्यचर्या का विरोध किया और उसे बालकों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्थिति एवं आवश्यकताओं पर केन्द्रित करने की बात कही। डीवी ने स्पष्ट किया कि बालकों की अपनी रुचि, रुझान और योग्यता होती है, वे विशेष प्रकार के सामाजिक पर्यावरण में रहकर विशेष प्रकार के अनुभव प्राप्त करते हैं, पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जो इनकी सहायता से विकसित की जा सके।

2. पाठ्यचर्या बच्चों की रुचि पर आधारित हो — पाठ्यचर्या के निर्माण के सम्बन्ध में यह इनका दूसरा सिद्धान्त है। डीवी के अनुसार शिक्षा का प्रारम्भ बालक की योग्यताओं, रुचियों तथा आदतों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने के बाद ही होना चाहिए। इन्होंने बच्चों की चार प्रकार की रुचि बताई हैं—बातचीत करने की रुचि, अन्वेषण और परीक्षण की रुचि, रचना करने की रुचि और कलात्मक अभिव्यक्ति की रुचि। डीवी के अनुसार शिक्षा की पाठ्यचर्या इन रुचियों पर आधारित होनी चाहिए। इस दृष्टि से इन्होंने प्रथम छः कक्षाओं की पाठ्यचर्या में भाषा, अंकगणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, काष्ठ कला, पाक विज्ञान, सिलाई, बागवानी, ड्राइंग, कला और संगीत को स्थान दिया है।

Scanned with CamScanner

3. पाठ्यचर्या वास्तविक जीवन की क्रियाओं पर आधारित हो — डीवी शिक्षा को कृत्रिम प्रक्रिया न मानकर एक जीवित प्रक्रिया मानते थे इसलिए ये इस बात पर बल देते थे कि किसी स्तर की पाठ्यचर्या में जो विषय सामग्री अथवा क्रियाएँ रक्खी जाएँ वे ऐसी होनी चाहिए कि उनका उस स्तर के बच्चों के वास्तविक जीवन से सम्बन्ध हो और वे उनके वास्तविक जीवन की वास्तविक क्रियाओं के आधार पर विकसित की जा सकें। डीवी बच्चों के अपने जीवन की क्रियाओं को सीखने का आधार बनाना चाहते थे, इसलिए इन्होंने इस सिद्धान्त पर बहुत बल दिया है।

4. पाठ्यचर्या उपयोगी हो — डीवी के अनुसार पाठ्यचर्या में जो भी विषय एवं क्रियाएँ रक्खी जाएँ उनकी व्यवहारिक उपयोगिता होनी चाहिए। इनका कहना है कि मनुष्य की आधारभूत सामान्य आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र, गृह और गृह की सजावट से सम्बन्धित होती हैं और उनमें उत्पत्ति, विनिमय और उपभोग की विधियाँ भी सम्मिलित होती हैं। इन समस्याओं का समाधान ही जीवन का लक्ष्य है। अतः पाठ्यचर्या में ऐसे विषयों को स्थान देना चाहिए जो इनसे सम्बन्धित क्रियाओं को करने की प्रेरणा और अवसर प्रदान करें।

5. पाठ्यचर्या के सभी विषयों और क्रियाओं में सहसम्बन्ध हो — जीवन अपने में पूर्ण इकाई होता है इसलिए डीवी का कहना है कि इससे सम्बन्धित समस्त ज्ञान एवं क्रियाएँ भी एक पूर्ण इकाई होते हैं। इस सत्य का उद्घाटन करते हुए इन्होंने इस बात पर बल दिया कि पाठ्यचर्या में जो भी विषय अथवा क्रियाएँ रक्खी जाएँ उनमें आपस में सहसम्बन्ध होना चाहिए और वे ऐसी हों कि बच्चों के वास्तविक जीवन की क्रियाओं के आधार पर विकसित की जा सकें।

6. पाठ्यचर्या लचीली हो — डीवी परम्परागत पाठ्यचर्या के बड़े विरोधी थे। इनका कहना था कि भिन्न-भिन्न बच्चों की रुचि, रुझान और योग्यता में भिन्नता होती है; उनका सामाजिक पर्यावरण भी भिन्न होता है और तदनुकूल उनकी आवश्यकताओं में भी भिन्नता होती है, इसलिए पाठ्यचर्या में भी भिन्नता होनी चाहिए। इनका यह भी कहना था कि समाज की स्थिति एवं आवश्यकताएँ सदैव बदलती रहती हैं, अतः पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जिसमें परिवर्तित समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से की जा सके अर्थात् उसमें सरलता से परिवर्तन किया जा सके। इसी को पाठ्यचर्या का लचीला होना कहा जाता है।

शिक्षण विधियाँ

डीवी मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य का विकास जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से होता है। उनके अनुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह शिक्षा कैसे चलती है, इस सम्बन्ध में डीवी का कहना है कि समस्त शिक्षा व्यष्टि द्वारा जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से आगे बढ़ती है (All education proceeds by the participation of the individual in the social consciousness of the race)। इससे सीखने के सम्बन्ध में दो बातें स्पष्ट होती हैं—पहली यह है कि सीखने के लिए सामाजिक पर्यावरण आवश्यक है, और दूसरी यह है कि कोई व्यक्ति तभी सीख सकता है जब उसमें सामाजिक चेतना की जागृति हो और वह क्रियाशील हो। क्रिया को डीवी सीखने का आधार मानते थे।

डीवी किसी भी पूर्व निश्चित ज्ञान (तथ्य अथवा सिद्धान्त) को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। ये उस सबको प्रयोग की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करने की स्वीकृति देते थे। प्रयोग की विधि ही उनकी दृष्टि से सीखने की उत्तम विधि है। इस विधि में अवलोकन (Observation),

Scanned with CamScanner

क्रिया (Activity), स्वानुभव (Self Experience), तर्क एवं निर्णय निकालना (Reasoning and Generalization) और परीक्षण (Testing) सब कुछ आ जाता है। ये शिक्षण विधि को इन सब पर आधारित करने की बात करते थे।

करके सीखने (Learining by Doing) और अनुभव द्वारा सीखने (Learning by Self Experience) के साथ-साथ डीवी ने इस बात पर भी बल दिया कि सीखने-सिखाने की क्रिया बच्चों की रुचि (Interest) पर आधारित होनी चाहिए। बच्चों की समस्त रुचियों को डीवी ने चार वर्गों में विभाजित किया है—बातचीत करने की रुचि, अन्वेषण और परीक्षण की रुचि, रचना करने की रुचि और कलात्मक अभिव्यक्ति की रुचि। डीवी के अनुसार हमें बच्चों को बातचीत करने के अवसर देने चाहिए, उन्हें स्वयं करके स्वयं खोजने के अवसर देने चाहिए, उन्हें कुछ कार्य करने के अवसर देने चाहिए और उन्हें अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के अवसर देने चाहिए और जिस स्थिति में हम रुचि को क्रियाशील कर सकें, उसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए।

शिक्षण के सम्बन्ध में डीवी महोदय ने एक तथ्य और उजागर किया और वह यह कि बच्चे अपने जीवन की वास्तविक क्रियाओं में रुचि रखते हैं, अतः उन्हें जो कुछ भी सिखाया जाए वह उनके वास्तविक जीवन पर आधारित वास्तविक क्रियाओं के माध्यम से सिखाया जाए।

डीवी ज्ञान को पूर्ण इकाई मानते थे। ये विभिन्न विषयों को अलग-अलग पढ़ाने का विरोध करते थे। इनका तर्क था कि मनुष्य का जीवन विविधताओं का योग होते हुए भी पूर्ण इकाई होता है अतः शिक्षा भी विविध विषयों एवं क्रियाओं की प्रक्रिया होते हुए भी एक पूर्ण इकाई होनी चाहिए। इसी आधार पर वे समस्त विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा एक-दूसरे से सम्बन्धित करके देने के पक्ष में थे। इसी को सहसम्बन्ध विधि (Correlation Method) कहते हैं।

डीवी महोदय के इन शिक्षण सिद्धान्तों के आधार पर इनके शिष्य किलपैट्रिक (Kilpatric) ने प्रोजेक्ट प्रणाली (Project Method) का निर्माण किया। प्रोजेक्ट प्रणाली में समस्त विषयों का ज्ञान एवं क्रियाओं का प्रशिक्षण किसी प्रोजेक्ट के माध्यम से एक इकाई के रूप में दिया जाता है। इस प्रणाली में सबसे पहले एक ऐसे प्रोजेक्ट (समस्या) का चुनाव किया जाता है जो यथा स्तर के बच्चों के जीवन से सम्बन्धित होता है, जिसको पूरा करने में वे रुचि लेते हैं और जिसको पूरा करने में यथा स्तर की पाठ्यचर्या के विविध भागों को पूरा किया जा सकता है। इस प्रोजेक्ट (समस्या) के चुनाव में बच्चों का सहयोग रहता है। इस प्रणाली का दूसरा सोपान होता है प्रोजेक्ट को पूरा करने का कार्यक्रम बनाना। इसमें भी शिक्षक और छात्र दोनों भाग लेते हैं। तीसरा सोपान निश्चित कार्यक्रम के अनुसार प्रोजेक्ट को पूरा करना होता है। यह कार्य बच्चे स्वयं करते हैं, शिक्षक उनका मार्गदर्शन भर करते हैं। मूल्यांकन इसका चौथा सोपान होता है और पाँचवाँ और अन्तिम सोपान होता है लेखन। इस अन्तिम सोपान पर बच्चे प्रोजेक्ट के चुनाव, योजना बनाने, उसे पूरा करने की विधियों और उसके मूल्यांकन से सम्बन्धित सभी तथ्यों को लेखबद्ध करते हैं। इन लेखों से शिक्षक छात्रों के कार्य का मूल्यांकन करते हैं।

अनुशासन

दण्ड के भय से बालकों से समाज सम्मत आचरण कराने और इस प्रकार व्यवस्था बनाए रखने को डीवी अनुशासन नहीं मानते थे। इनका स्पष्टीकरण है कि शिक्षक जब निरंकुश शासक की भाँति दण्ड विधान द्वारा व्यवस्था कायम रखता है तो बालाकों में उसके प्रति घृणा और विद्रोह

Scanned with CamScanner

की भावना उत्पन्न हो जाती है और जब यह भावना तीव्र हो जाती है तो बच्चे व्यवस्था को तोड़ देते हैं और हम कहते हैं कि वे अनुशासनहीन हो गए हैं। सच बात तो यह है कि डण्डे के भय से अनुशासन कायम नहीं होता, केवल व्यवस्था कायम होती है। डीवी के विचार से अनुशासन एक आन्तरिक शक्ति है जो मनुष्य को समाज सम्मत सोचने और व्यवहार करने की ओर प्रवृत्त करती है। इस शक्ति अथवा गुण के विकास के लिए डीवी लोकतन्त्रीय पर्यावरण की आवश्यकता पर बल देते थे।

लोकतन्त्रीय पर्यावरण की सबसे बड़ी विशेषता स्वतन्त्रता है। ऐसे पर्यावरण में बच्चों पर किसी प्रकार का बाहरी दबाव नहीं होता, वे अपनी रुचि, रुझान, योग्यता और आवश्यकतानुसार क्रियाओं का चुनाव करने और उनका सम्पादन करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। लोकतन्त्रीय पर्यावरण की दूसरी विशेषता है प्रेम, सहानुभूति और सहयोग। ऐसे पर्यावरण में सब लोग एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, एक-दूसरे के सुख-दुःख का ध्यान रखते हैं और किसी भी कार्य को सहयोग से करते हैं। डीवी का स्पष्टीकरण है कि ऐसे पर्यावरण में बच्चों के अनुशासनहीन होने का प्रश्न ही नहीं उठता, उनमें तो एक ऐसी शक्ति का विकास होता है कि वे समाज हितकारी बात सोचते हैं और वैसा ही करते हैं। इसे ही डीवी ने स्वानुशासन (Self Discipline) की संज्ञा दी है। इनके अनुसार स्वानुशासन ही सच्चा अनुशासन है।

डीवी के अनुसार अनुशासन का उद्देश्य समाजीकृत व्यष्टि (Socialized Individual) का निर्माण करना है जो सामाजिक हित में अपना योगदान दे सके। यह तभी सम्भव है जब बच्चे के हृदय में दूसरों के प्रति प्रेम और श्रद्धा हो, उसमें त्याग की भावना का विकास हो चुका हो। इस दृष्टि से भी डीवी अनुशासन की प्राप्ति के लिए डण्डे के प्रयोग का विरोध करते थे। इनका कहना था कि डण्डे के प्रयोग से तो बच्चों में क्रोध और घृणा के भाव ही उत्पन्न होते हैं।

शिक्षक

शिक्षा के क्षेत्र में कुछ विचारक शिक्षक को अधिक महत्त्व देते हैं और कुछ शिक्षार्थी को। डीवी लोकतन्त्रीय विचारधारा के पोषक थे, ये प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर करते थे इसलिए शिक्षक को सम्मान की दृष्टि से देखते हुए भी ये उसे बच्चों पर अपने आदर्शों को लादने की छूट नहीं देते। ये शिक्षक को समाज सेवक के रूप में स्वीकार करते थे। इनका कहना है कि शिक्षक का कार्य ऐसा पर्यावरण तैयार करना है कि बच्चे उसकी क्रियाओं में भाग लेकर अपनी समस्याओं का हल ढूँढ सकें और उनमें अपने व्यवहारिक जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक क्रियाओं के सम्पादन करने की रुचि और कौशल का विकास हो। इसी को ये सामाजिक कुशलता कहते थे। इस प्रकार डीवी शिक्षक को उचित पर्यावरण के नियोजक और बच्चों के पथप्रदर्शक के रूप में स्वीकार करते थे।

शिक्षार्थी

जैसा कि ऊपर कहा गया है डीवी प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर करते थे और इसलिए ये प्रत्येक बच्चे को अपने स्वाभाविक विकास के लिए स्वतन्त्रता देना चाहते थे। इनका मत है कि शिक्षा की योजना बनाते समय हमें बच्चों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्थिति और आवश्यकताओं का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। प्रत्येक बच्चे को अपनी रुचि, रुझान और आवश्यकतानुसार समाज

Scanned with CamScanner

सम्मत विकास की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता देने के ये सबसे बड़े समर्थक थे। इनका नारा था कि प्रत्येक बच्चे को अपनी उच्चतम योग्यताओं का अधिकतम विकास करने के अवसर देने चाहिए जिससे वे अपना तथा समाज का अधिक से अधिक भला कर सकें। इस दृष्टि से कुछ विद्वान् यह कहते हैं कि डीवी बालक को शिक्षा का केन्द्र मानते थे। परन्तु यह कथन बड़ा भ्रमात्मक है। ये तो व्यष्टि और समाज दोनों को समान आदर की दृष्टि से देखते थे, और यही लोकतन्त्रीय भावना का आधारभूत सिद्धान्त है।

विद्यालय

डीवी के अनुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। बालक अपने चारों ओर की वस्तुओं, भाषा और क्रियाओं का ज्ञान समाज में रहकर ही प्राप्त करता है। डीवी का कहना है कि सीखने की प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक उचित सामाजिक पर्यावरण की आवश्यकता होती है। इसे पर्यावरण को उपस्थित करने के लिए ये विद्यालयों की आवश्यकता समझते थे। परन्तु ये ईंटों से बनी उस चार दीवारी को विद्यालय नहीं कहते जहाँ सूचनाएँ दी जाती हैं। इनकी दृष्टि से विद्यालय समाज के लघु रूप होते हैं जिनकी क्रियाओं में भाग लेकर बच्चे नित्य नए अनुभव करते हैं और अपने तथा समाज के उपयोग के अनुभवों का चुनाव करते हैं।

डीवी ने शिक्षा के दो अंग निश्चित किए हैं—मनोवैज्ञानिक और सामाजिक। डीवी के अनुसार विद्यालयों को बच्चों की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिक पूर्ति के लिए बच्चों को विद्यालयों में घर का सा पर्यावरण (स्वतन्त्रता, प्रेम, सहानुभूति और सहयोग) प्राप्त होना चाहिए। सामाजिक पूर्ति से डीवी का तात्पर्य यह है कि विद्यालय भावी जीवन की तैयारी के स्थान नहीं अपितु स्वयं समाज का लघु रूप होने चाहिए। लघु रूप से डीवी का तात्पर्य समाज के जटिल रूप को सरल रूप में प्रस्तुत करने से है। डीवी का कहना है कि विद्यालय के इस जीवित सामाजिक पर्यावरण में बच्चे एक-दूसरे से प्रेम करें, एक-दूसरे का आदर करें और एक-दूसरे का सहयोग करें। ऐसे विद्यालयों की क्रियाओं में भाग लेने से बच्चों में सामाजिक कुशलता का विकास होता है।

डीवी विद्यालयों को ज्ञान की दूकान के रूप में स्वीकार नहीं करते, ये उन्हें प्रयोगशाला के रूप में स्वीकार करते हैं। डीवी के अनुसार विद्यालय ऐसी प्रयोगशालाएँ होने चाहिए जहाँ बच्चे पूर्व अनुभवों की सत्यता की परख कर सकें और नए-नए अनुभवों को प्राप्त कर नए-नए सत्यों की खोज करें। इसके लिए विद्यालयों में बच्चों को कार्य और विचार, दोनों की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

डीवी के विचार से विद्यालयों में परम्परागत पाठ्यचर्या को पूरा करने पर बल देने के स्थान पर उनमें बदलते हुए समाज की आवश्यकताओं का समावेश करना चाहिए। डीवी ऐसे विद्यालयों को प्रगतिशील विद्यालय (Progressive Schools) कहते थे जो जीवन की वास्तविकता के निकट होते हैं, जिनमें बच्चे कार्य करने और विचार करने के लिए स्वतन्त्र रहते हैं, जिनकी पाठ्यचर्या संकीर्ण न होकर विस्तृत होती है, जिनमें नए-नए अनुभवों का समावेश होता रहता है और जहाँ बच्चे स्वयं करके, स्वयं के अनुभवों के आधार पर सीखते हैं। विद्यालयों का स्वरूप ऐसा ही होना चाहिए।

शिक्षा के अन्य पक्ष

जन शिक्षा — डीवी लोकतन्त्र के समर्थक थे और व्यष्टि और समाज दोनों को समान आदर की दृष्टि से देखते थे। लोकतन्त्र शिक्षा को मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार मानता है और उसकी

Scanned with CamScanner

व्यवस्था करना राज्य का अनिवार्य कर्तव्य मानता है। डीवी ने अपने जीवन में इस बात पर बहुत बल दिया कि राज्य को सभी बच्चों को अपने विकास के समान अवसर देने चाहिए। पर यह विकास व्यष्टि और समाज दोनों के हित में होना चाहिए।

स्त्री शिक्षा — डीवी लोकतन्त्र के समर्थक थे और लोकतन्त्र स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं करता, सभी को अपनी रुचि, रुझान, योग्यता और आवश्यकतानुसार विकास के स्वतन्त्र एवं समान अवसर प्रदान करता है। डीवी स्त्री-पुरुष दोनों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के पक्षधर थे। इससे उस समय स्त्री शिक्षा को बड़ा बढ़ावा मिला और उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की भाँति अपनी योग्यता का विकास एवं प्रयोग करना शुरू किया। इससे पश्चिमी देशों के आर्थिक विकास में तेजी आना स्वाभाविक था।

व्यवसायिक शिक्षा — यूँ डीवी ने प्रत्यक्ष रूप से न शिक्षा के उद्देश्य निश्चित किए हैं, न उसकी पाठ्यचर्या निश्चित की है और न किसी प्रकार की शिक्षा पर बल दिया है पर जिस सामाजिक कुशलता की इन्होंने चर्चा की है उसमें मनुष्य को अपनी रोजी-रोटी कमाने योग्य बनाने पर बल दिया है। इनके इस विचार से व्यवसायिक शिक्षा को बढ़ावा मिलना स्वाभाविक था।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा — डीवी अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में आदर्शवाद से प्रभावित थे, उस समय इन्होंने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया था। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम काल में ये जेम्स के प्रयोजनवाद से प्रभावित हुए। उस समय ये प्रत्येक ज्ञान और क्रिया को वास्तविक जीवन की कसौटी पर कसने लगे, मानव जीवन के लिए उसकी उपयोगिता की दृष्टि से देखने-समझने लगे और उसी ज्ञान एवं क्रिया का समर्थन करने लगे जिसकी मानव जीवन में उपयोगिता हो। इन्होंने स्पष्ट किया कि इस जीवन की दृष्टि से धार्मिक नैतिकता के स्थान पर सामाजिक नैतिकता की अधिक उपयोगिता है। हाँ, यदि धार्मिक नैतिकता में कोई ऐसे तत्त्व हैं जिनकी व्यष्टि और समाज के वास्तविक जीवन में कोई उपयोगिता है तो उसमें बच्चों को अवश्य प्रशिक्षित किया जाए, परन्तु धर्म के नाम पर नहीं, सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हुए अनुभवों के आधार पर। ये ऐसी सामाजिक नैतिकता के हामी थे जिससे व्यष्टि और समाज दोनों का हित हो। इनकी दृष्टि से स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व मूलभूत सामाजिक नैतिकता है।

Scanned with CamScanner